अध्यक्ष महोदय : सम्बन्धित सदस्यों को तदनुसार सूचित कर दिया जायेगा ।

अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति के बारे में प्रस्ताव

प्रधान मंत्री तथा वैदेशिक-कार्य एवं रक्षा मंत्री (श्री जवाहरलाल नेहरू) : मैं प्रस्ताव करता हूं :

> "कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और उसके सम्बन्ध में भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये ।"

मैं मानता हूं कि जब कि मुझ से समस्त अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पर बोलने की आशा की जा रही है हैदराबाद में हुई रेल दुर्घटना का समाचार सुन कर, जिसका आपने अभी उल्लेख किया था, इस समय मेरा मन बहुत दुखी है ।

[**उपाध्यक्ष महोदय** पीठासीन हुए]

इस घरेलू दुर्घटना को देख मेरा ध्यान इस से भी बड़ी दुर्घटनाओं की ओर गया जो, यदि दुर्भाग्यवश युद्ध आरम्भ हो गया तो संसार को सहन करनी पड़ेंगी । यदि संसार युद्ध आरम्भ करने की मूर्खता कर बैठे तो सारे संसार में जो जो घटनायें घटेंगी उन के साथ तो इस दुर्घटना की तुलना नहीं की जा सकती यद्यपि यह घटना भी बहुत बड़ी है।

इस सभा में यह प्रथा बन गई है कि हर सत्र में वैदेशिक-कार्यों पर वाद-विवाद हो । हम ने यह प्रथा अच्छी ही बनाई है, क्योंकि इससे हम कुछ समय के लिये संसार की महान् समस्याओं के बारे में सोचते हैं और फिर हम अपनी समस्याओं को ठीक प्रकार देखते हैं । स्वाभाविक है कि हमें अपनी राष्ट्रीय समस्याओं की अधिक चिन्ता रहती है । उसका हमारे ऊपर प्रभाव पड़ता है । हम अपने देश का निर्माण करने की सोच रहे हैं और हमारा अधिक समय इसी में व्यतीत होता है और होना भी यही चाहिये । परन्तु अपनी इन राष्ट्रीय समस्याओं को ठीक प्रकार समझने के लिये भी हमें संसार की समस्याओं को, और वह भी उस संसार की जो परिवर्तनशील, उपद्रवमय घबराया हुआ और कई बार आतंकित होता है । इस लिये इस सभा के प्रत्येक सत्र में मैं इन वाद-विवादों का स्वागत करता हूं । ऐसा भी होता है कि कई ऐसी बातें कही जाती हैं जो कि पहले कही जा चुकी होती है । चाहे नई बातें आती रहती हैं और नई परिस्थितियां उत्पन्न होती रहती हैं फिर भी प्राय: ये वाद-विवाद एक ही ढंग के होते हैं।

इस में कोई संदेह नहीं कि विपक्ष के कुछ माननीय सदस्य, जैसे कि उन्होंने पिछली बार कहा था, अब भी यह पूछेंगे कि भारत राष्ट्रमण्डल म क्यों है ? कुछ निश्चित उक्तियां, निश्चित विचार-धारायें और विचार इस प्रकार स्थिर हो जाते हैं कि संसार में चाहे कुछ भी हो उसका उन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । उन लोगों को समझाना मेरे लिये बहुत कठिन है जो समझने का यत्न ही नहीं करते और उन पुरानी उक्तियों के अर्थ समझे बिना ही दोहराये जाते हैं । इसमें सन्देह नहीं कि यह विरोधी पक्ष के सदस्यों द्वारा बड़ा बल देकर यह कहा जायेगा, परन्तु कोई यह नहीं बतायेगा कि राष्ट्र-मण्डल में रहने का अर्थ क्या है और इस से हमारी संसार में शान्ति स्थापित करने की नीति को कितनी सहायता मिली है और क्या हमारे कोई कार्यवाही करने या

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

न करने का उस नीति पर कोई प्रभाव पड़ा है या नहीं जिसका हमने अनुसरण किया है और चाहते हैं कि दूसरे देश भी उस नीति पर चलें। अन्ततः हम चाहें व्यक्तिगत नीतियों पर चर्चा करें और चाहें गोआ और भारत की फ़्रांसीसी बस्तियों जैसे महत्त्वपूर्ण विषय पर भी बात करें, इसमें शक नहीं कि हमारे लिये उनका बड़ा महत्त्व है। इसके होते हुए भी इन विषयों पर भी हमें उस नीति को दृष्टि में रखते हुए सोचना है जिसका हम संसार में अनुसरण करते हैं। यदि हम उस उदार नीति को भूल कर कोई कार्यवाही कर भी लें, तो वह ठीक भी हो सकती है और गलत भी। परन्तु बड़े विवादों का उससे सम्बन्ध अवश्य रहेगा। मैं चाहता हूं कि सभा इस बात को ध्यान में रखे कि आज इन सब बातों में परस्पर सम्बन्ध है जिसका प्रभाव सारे संसार पर पड़ता है। यूरोप में तो कुछ हो रहा है उस में हम न तो हस्तक्षेप करते हैं और न ही करना चाहते हैं; फिर भी संसार के समक्ष मुख्य समस्याओं में से एक यह है कि जर्मनी का और उसके पुनः शस्त्रीयकरण का क्या होता है। यह इतनी महान् समस्या है जिसका प्रभाव यूरोप पर ही नहीं, एशिया पर भी, बल्कि समस्त संसार पर पड़ेगा। हम इस में हस्तक्षेप नहीं करते, परन्तु हमें यह सब समझना है। इस बारे में हमारे भी कुछ विचार होने चाहियें और इन सब को दृष्टि में रख कर हमें विचार करना चाहिये। अतः यह स्वाभाविक है कि हम सारे चित्र को सामने रखें चाहे अपने भूगोल, किसी हद तक अपने संसाधनों और अपने सामर्थ्य से हमारी कार्यवाही सीमित है, क्योंकि हम बड़ी बड़ी बातें नहीं बनाना चाहते, क्योंकि हम जानते हैं कि हम उनके अनुसार कार्य नहीं कर सकते। अतः हम अपने कार्यवाही करने के सामर्थ्य के अनुसार ही कुछ करते हैं। हम इन जटिल समस्याओं के बारे में बड़ी नम्रता से कुछ कहते हैं और मुझे तो ठीक भी नहीं लगता कि मैं किसी और ढंग में इसकी चर्चा करूं और मैं बड़े आदर से दूसरे देशों को भी ऐसा ही करने के सुझाव देता हूं। परन्तु जहां तक हमारा सम्बन्ध है हम निश्चय से इन समस्याओं पर बड़ी नम्रता और संकोच से विचार करते हैं। उन में बड़ी उलझनें हैं और उन्हें अत्यधिक सरल बनाना और उन्हें एक ही वाक्य अथवा नारे में व्यक्त करना इतना सरल नहीं और ऐसा करना बड़ी भूल होगी। प्रत्येक देश के लिये चाहे वह कोई भी हो ये समस्यायें बड़ी कठिन हैं।

कुछ समय हुआ यूरोप में एक और बड़ी घटना हुई जब फ़्रांस की सरकार ने यूरोपियन रक्षा समुदाय की कुछ शर्तें स्वीकार करने से इन्कार कर दिया, उन्हें स्वीकार करने के लिये कहा गया था, परन्तु उन्होंने इन्कार कर दिया, मैं इस प्रश्न पर चर्चा नहीं करूंगा, क्योंकि इसका अथवा इस पर अपनी राय देने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। यह काम तो फ़्रांस सरकार और दूसरी सम्बन्धित सरकारों का है। परन्तु मैं तो केवल यह कहना चाहता हूं कि वास्तविकता को देखते हुए एसा प्रतीत होता है कि फ़्रांस सरकार और वहां के लोग बड़ी दुविधा में पड़ गये थे। दुविधा क्या थी? कि क्या ऐसा करना ठीक होगा या गलत उन्हें यही डर था। वे बड़े वीर और समुन्नत लोग हैं, परन्तु उन्हें भी कई डर घेरे हुए हैं और यह विशालकार्य रूस का है। यह

उचित है या नहीं यह दूसरी बात है। एक ओर डर उन्हें जर्मनों के पुनः शस्त्रीकरण का है। उन्हें जर्मनी के सशस्त्र बल का अनुभव है।

अब हमें क्या करना है? (अन्तर्बाधायें)। मैं इन विषयों के बारे में यह नहीं कहता कि ऐसा करना ठीक था या गलत। हम किसी समस्या को कैसे सरल बना सकते हैं और कह सकते हैं कि उस सरकार को यह करना चाहिये और वह नहीं करना चाहिये जब कि हम उस समस्या की उलझन को नहीं समझते, जिस प्रकार कि उस सरकार अथवा वहां के लोगों को उसका सामना करना पड़ा। इसलिये मैं इन समस्याओं के बारे में बड़ी नम्रता और संकोच से कुछ कहता हूं और ऐसे मामलों पर, जिनका हमारे साथ परोक्ष रूप से चाहे हो, पर प्रत्यक्ष रूप से कोई सम्बन्ध नहीं है, मैं अपनी और अपनी सरकार की राय व्यक्त करने के लिये अधिक उत्सुक नहीं हूं।

हाल ही में कुछ घटनायें हुई हैं, विशेषकर एशिया में, सभा जेनेवा सम्मेलन के बारे में जानती ही है जिसके परिणामस्वरूप हिन्द-चीन के बारे में कुछ समझौते हुए हैं।

जेनेवा सम्मेलन के बारे में सब से पहले स्मरणीय बात यह है कि यह सम्मेलन एशियाई मामलों हिन्द-चीन तथा कोरिया के मामले को निबटाने के लिये हुआ था हिन्द-चीन के सम्बन्ध में, इस सम्मेलन में युद्धरत देशों को छोड़ कर और कोई एशियाई देश उपस्थित नहीं था। मैं इस की शिकायत नहीं कर रहा हूं, मैं केवल उस अजीब ढंग की ओर संकेत कर रहा हूं जो आजकल अपनाया जाता है। यह धारणा है कि एशिया के मामलों का निपटारा मुख्यतः उन देशों को करना चाहिये जिनका हम आदर करते हैं। किन्तु वास्तविकता यह है कि दूसरे देश एशिया के मामलों के विषय में बिना एशियावासियों की सलाह के भी निर्णय कर सकते हैं।

आप इस चित्र की वास्तविकता देख सकते हैं। एशिया अथवा एशिया के देशों की वास्तविकता को भुला कर इस प्रश्न को निबटाने का एक कृत्रिम प्रयत्न किया गया, किन्तु वास्तविकता अपने आप प्रकट हो गई। यद्यपि एशिया के देश उपस्थित नहीं थे, किन्तु उन्हें एशियाई देशों के मत का विचार करना पड़ा जो कोलम्बो सम्मेलन की कुछ सिफारिशों तथा निर्णयों द्वारा प्रकट किया गया था। मैं सभा का ध्यान इस ओर आकर्षित करता हूं कि ये सिफारिशें इस वर्ष के प्रारम्भ में हिन्द-चीन के सम्बन्ध में इस सभा में दिये गये सुझावों के ऊपर आधारित थीं। इस प्रकार जेनेवा में भी एशियाई देशों के मत का ध्यान रखना पड़ा।

जेनेवा में समझौता हो गया तथा ७$^{१}/_{२}$ वर्षों से हिन्द-चीन में चलने वाला युद्ध समाप्त हो गया। कई वर्षों में पहली बार संसार को युद्ध से विराम मिला तथा हिन्द-चीन में मित्रता तथा शांति का एक नया वातावरण स्थापित हुआ। किन्तु कोई भी इतना मूर्ख न था कि यह समझ लेता कि समस्या हल हो गई है। हिन्द-चीन तथा कोरिया में कोई समस्या हल नहीं हुई केवल ऐसा वातावरण बनाने की ओर कदम उठाये गये जो समस्याओं के हल करने में सहायक सिद्ध होंगे। इससे संसार के सभी देशों में शांति की सांस ली गई कि कम से कम वे शांति के निकट पहुंच रहे हैं।

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

हाल ही में फिलीपीन में मनीला में एक और सम्मेलन हुआ । हमें वहां निमंत्रित किया गया था, किन्तु हमने उसमें भाग लेने में अपनी असमर्थता व्यक्त की । ऐसा क्यों हुआ, क्योंकि सामान्यत: दूसरे देशों तथा अपने पड़ोसी देशों के सम्मेलनों में भाग लेने तथा दूसरों का दृष्टिकोण जानने और अपना दृष्टिकोण व्यक्त करने की हमारी अभिलाषा रहती है । तब हमने मनीला सम्मेलन में क्यों भाग नहीं लिया ? अन्य कारणों के अतिरिक्त मनीला सम्मेलन में भाग लेने से हमारी किसी गुट में सम्मिलित न होने की आधारभूत नीति छूट जाती । केवल इस सम्मेलन में भाग लेने के लिये कई वर्षों से अपनाई हुई हम अपनी इस आधारभूत नीति को नहीं छोड़ सकते ।

दूसरे हमारे वहां जाने से हिन्द-चीन के तीनों आयोगों के सभापति के रूप में हमारी स्थिति पर भी प्रभाव पड़ता । सभी पक्षों द्वारा ऐसे दायित्वपूर्ण पद के लिये हम इस कारण चुने गये हैं कि हम एक विशेष नीति पर चल रहे हैं । यदि हम इस नीति को बदल दें, तो हिन्द-चीन में हमारी स्थिति बिल्कुल बदल जायेगी ।

मुझे अक्सर इस पर आश्चर्य हुआ है कि मनीला सम्मेलन करने तथा इसके परिणामस्वरूप यह दक्षिण पूर्वी एशिया संधि करने का क्या विशेष अभिप्राय: था ? कि । आकस्मिक भय से ये देश इकट्ठे हो गये ? क्या कोई आक्रमण होने वाला था ? क्या दक्षिण पूर्वी एशिया अथवा प्रशान्त क्षेत्र की शान्ति को अकस्मात् भय उत्पन्न हो गया था ? अब मैं समझा हूं कि क्या भय है मेरा अभिप्राय: दोनों ओर से होने वाले भय से है । आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड तथा उनके आस-पास के दूसरे देशों को भय है । मैं इस तथ्य को अस्वीकार नहीं कर सकता । किन्तु हम इस भय से किस प्रकार मुक्त हो सकते हैं तथा किस प्रकार उन से बचने का उपाय कर सकते हैं ।

मैं सभा से पूछता हूं कि क्या दक्षिण पूर्वी एशियाई संधि से यह तनाव कम हो गया है ? क्या इससे दक्षिण पूर्वी एशिया विश्व के किसी अन्य भाग में शान्ति तथा सुरक्षा की भावना अधिक बढ़ गई है या नहीं ? वास्तव में इसका उलटा हुआ है । जेनेवा सम्मेलन के द्वारा जो अच्छा वातावरण निर्मित हुआ था वह छिन्न-भिन्न हो गया है । यह अच्छा नहीं हुआ । वास्तव में यह संधि बहुत दूर तक नहीं जाती । केवल जो लोग पूर्व से ही एक विशेष विचार के थे उन्होंने अपने मत को अधिक सहयोगपूर्ण ढंग से व्यक्त कर दिया है । इससे उन देशों की कोई शक्ति नहीं बढ़ी है । इसलिये एक ओर तो इससे कोई लाभ नहीं हुआ है, दूसरी ओर इससे भय तथा तनाव और बढ़ गया है ।

यह सुझाव देना मेरे लिये अवास्तविक होगा कि दक्षिण पूर्वी एशिया का कोई देश अथवा भारत ऐसी मिथ्या सुरक्षा की भावना में रहे कि कुछ नहीं होगा तथा हमें निश्चित रहना चाहिये । उत्तरदायी देश ऐसा आचरण नहीं कर सकते । उन्हें किसी भी परिस्थिति के लिये पहले से तैयार रहना चाहिये तथा मैं सुझाव दूंगा कि उनको अपनी नीति शान्ति की दिशा की ओर ले चलनी चाहिये ।

सीटो या सीडो का दूसरा रूप भी विचित्र है । मैं कई देशों के एकत्रित होने तथा अपनी परीक्षा के लिये समझौता अथवा संधि करने की बात समझ सकता हूं । इस विशेष सीटो संधि से हुए समझौते

अथवा संधि के जहां तक सैनिक रूप का सम्बन्ध है वह बहुत सुदृढ़ नहीं है यह इन देशों की सीमा का अतिक्रमण करता है । इस समझौते में ऐसे क्षेत्र की ओर निरन्तर निर्देश किया गया है जो यद्यपि संधि से सम्बन्धित पक्षों का नहीं है तथापि वे उसको इस प्रकार कह सकते हैं कि "यह भी हमारा क्षेत्र है" । मेरे विचार से यह इस विचार-धारा का भयावह विस्तार है । मैं मनीला संधि में भाग लेने वाले देशों के उद्देश्य की आलोचना नहीं कर रहा हूं । मैं उनका लक्ष्य नहीं जानता, किन्तु मेरा अनुमान है कि उनका लक्ष्य सुरक्षा है तथा मैं उसे चुनौती नहीं देता; किन्तु यह निवेदन करता हूं कि उन्होंने इसे गलत रूप में प्रस्तुत किया है । उन्होंने इस क्षेत्र का उल्लेख किया है जो आंशिक रूप से निश्चित तथा आंशिक रूप से अनिश्चित है, क्योंकि यदि सम्बन्धित देश एकमत होकर कहें कि "यह भी हमारा क्षेत्र है" तो वे इसे बढ़ा सकते हैं और यदि उस क्षेत्र में कुछ हो जाय तो वे जैसे उचित समझें वैसी कार्यवाही कर सकते हैं ।

हमारे माननीय सदस्य उन पुराने दिनों को स्मरण करेंगे जब कि इन बड़े राष्ट्रों का प्रभाव एशिया तथा दूसरे राष्ट्रों पर था । इन बड़े-बड़े राष्ट्रों के बीच कभी-कभी झगड़ा होता था और वे अपने प्रभाव के क्षेत्रों को बांटने का समझौता कर लेते थे । मुझे यह प्रतीत होता है कि इस मनीला संधि का उद्देश्य भी शक्तिशाली राष्ट्रों के प्रभाव क्षेत्र बनाना ही है, क्योंकि अंत में ये बड़े तथा शक्तिशाली देश ही किसी बात का निश्चय करेंगे ये दो या तीन दुर्बल एशियाई देश नहीं जो इस में सम्मिलित हैं ।

दूसरी बात जिसका मैं उल्लेख करना चाहता हूं यह है : इस संधि में आक्रमण का उल्लेख है । बाह्य आक्रमण तो समझ में आ सकता है, किन्तु इसमें इसी क्षेत्र के अन्दर ऐसी स्थिति का उल्लेख भी है जिसमें इन्हें हस्तक्षेप करने का अधिकार है । इन शब्दों की ओर ध्यान दीजिये । 'इस क्षेत्र में उत्पन्न हुई कोई बात अथवा स्थिति' यह बाहरी हमला नहीं है । अर्थात् इस क्षेत्र की किसी आन्तरिक स्थिति के कारण ये देश उस में हस्तक्षेप कर सकते हैं । क्या इसका इस क्षेत्र के देशों की अखण्डता, सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्नता तथा स्वतन्त्रता पर प्रभाव नहीं पड़ता ? यदि आप इस सीटो संधि को पढ़ें, तो इसका अधिकांश भाग अच्छा है । इस में संयुक्त राष्ट्र चार्टर के सम्बन्ध में बड़े-बड़े शब्द हैं, उनकी शान्ति की इच्छा के सम्बन्ध में बड़े-बड़े शब्द हैं तथा उपनिवेशों में स्वायत्त शासन को प्रोत्साहित करने की इच्छा के सम्बन्ध में बड़े-बड़े शब्द हैं । किन्तु मैं समझता हूं कि मैंने इसे ध्यानपूर्वक पढ़ा है—इस मनीला संधि का लक्ष्य न केवल गलत है, बल्कि एशिया के किसी भी देश की दृष्टि से खतरनाक है । मैं पुनः कहता हूं कि मैं समझता हूं कि हो सकता है कि इसके उद्देश्य अच्छे हों । मैं पुनः कहता हूं कि एशिया तथा बाहर के देशों को कुछ भय है और ये भय कुछ उचित भी हो सकते हैं । किन्तु, मैं यह कहता हूं कि इस संधि को करने का तरीका गलत है और यह एक ऐसा तरीका है जो एशिया के एक बड़े भाग को शत्रु बना सकता है । क्या इस प्रकार, अधिक संघर्ष उत्पन्न कर के, अधिक विरोध उत्पन्न करके और लोगों को यह सोचने का अवसर देकर कि इस प्रदेश में आप सुरक्षा की बजाय असुरक्षा उत्पन्न कर रहे हैं, शान्ति और सुरक्षा स्थापित कर सकते हैं ?

फिर, हम लोगों ने शान्ति के एक क्षेत्र के सम्बन्ध में बातचीत करने का

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

साहस किया है और हमारा विचार है कि दक्षिण-पूर्वी एशिया शान्ति के बड़े क्षेत्रों में से एक हो सकता है। मनीला संधि उस शान्ति क्षेत्र के मार्ग में बाधा डाल रही है। यह संधि शान्ति के क्षेत्र को भावी युद्ध-क्षेत्र में बदलना चाहती है। अतः ये सब बातें हमें अशान्तिकारक मालूम पड़ती हैं।

कुछ वर्ष पूर्व उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन बनाया गया था और यह संयुक्त सुरक्षा वाले कुछ देशों के सुरक्षा संगठन के रूप में लोगों के सम्मुख आया। मुझे कहना चाहिए कि उस समय यह उचित जान पड़ता था--किसी और मामले में नहीं--बल्कि इसलिए कि वह कुछ ऐसे देशों की उचित प्रतिक्रिया थी जो कुछ घटनाओं से भयभीत होकर सुरक्षा के लिये इकट्ठे हो गये थे पर ध्यानपूर्वक देखिये कि कैसे इस उत्तर अतलान्तिक सन्धि का विकास हुआ। इसका विकास भौगोलिक रूप से उत्तर अतलान्तिक समुदाय के लिए हुआ था, पर यह भूमध्य सागर, अफ़्रीका के तटों, पूर्वी अफ़्रीका और दूरवर्ती देशों तक जिनका अतलान्तिक समुदाय से कोई सम्बन्ध नहीं है, फैल गया। अन्दर भी इसका फैलाव होने लगा। उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन की समय-समय पर होने वाली बैठकों में सम्मिलित राष्ट्रों द्वारा रखे गये संकल्पों से शनैः शनैः इसका क्षेत्र बढ़ने लगा। प्रारम्भ में उत्तर अतलान्तिक संधि संगठन का लक्ष्य रक्षा था, पर धीरे-धीरे हम देखते हैं कि इस में उपनिवेश तथा अन्य सब अधिकार भी माने जाने लगे। मेरी समझ में यह नहीं आता कि न साम्राज्यवादी शक्तियों का अपने उपनिवेशों पर अधिकार बनाये रखना कैसे उत्तर अतलान्तिक समुदाय की सुरक्षा का मामला है। यही विचार बढ़कर उत्तर अतलान्तिक संधि के रूप में सम्बन्धित शक्तियों के लिये उपनिवेशों को बनाये रखने का एक साधन बन गया है।

मुझे आशा है कि सभा को स्मरण होगा कि अभी हाल में पुर्तगाली अधिकारियों द्वारा इस सम्बन्ध में भी कहा गया था कि उत्तर अतलान्तिक संधि के विस्तृत क्षेत्र में गोआ भी समाविष्ट है। उन संधियों से न तो हमारा कोई सम्बन्ध है और न हम पर उनका कोई दबाव है, क्योंकि हम उसके सदस्य नहीं हैं। हम लोगों ने यह बता दिया है और म भी इस मामले में निश्चित नहीं हूं कि क्या उत्तर अतलान्तिक शक्तियां, अथवा उन में से अधिकांश पुर्तगाल सरकार के इस कथन से कि गोआ भी उनका एक भाग है सहमत हैं। मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि एक विशेष प्रयोजन के लिए की गई संधियां किस प्रकार से अपने क्षेत्राधिकार तथा स्वरूप को धीरे-धीरे इतना विस्तृत कर लेंगी जितनी कि लोग उनके सम्बन्ध में कल्पना भी नहीं करते थे। तो, यदि उत्तर अतलान्तिक संधि ने अपना क्षेत्र गोआ तक बढ़ा लिया है, तो क्या दक्षिण पूर्वी एशिया संधि भी अपना क्षेत्र इसी प्रकार बढ़ा लेगी। यह हमारे दरवाजे से प्रारम्भ होती है; यह कहां तक जायेगी?

इन संधियों ने, विशेषकर दक्षिण पूर्वी एशिया संधि ने कुछ ऐसी साम्राज्यवादी शक्तियों का रूप धारण कर लिया है जो स्वयं साम्राज्यवादी नहीं ह पर जो साम्राज्यवाद की पोषक हैं और इसमें कुछ ऐसे देश हैं जो दक्षिण पूर्वी एशिया के इस बड़े क्षेत्र के भाग्य विधाता बनने का प्रयत्न कर रहे हैं। मेरा विचार है कि अब संसार इतना छोटा हो गया है कि

कुछ थोड़े से देश जिनमें एशिया के भी देश सम्मिलित हैं, यह नहीं कह सकते कि हमारे बीच में कोई दखल नहीं देगा और यह क्षेत्र केवल हमारा ही है। मैं यह स्वीकार करने के लिए पूर्णरूपेण तैयार हूं कि जो कुछ भी दक्षिण पूर्वी एशिया में होता है उसका शेष संसार से भी सम्बन्ध है, केवल दक्षिण-पूर्वी एशिया से ही नहीं शेष संसार यूरोप या अमरीका अन्य कोई भी देश हो सकता है और हमें सबसे परामर्श लेना है: हम अकेले नहीं रह सकते। किन्तु मेरा यह निवेदन है कि जब किसी क्षेत्र के बड़े महत्वपूर्ण मामलों पर कोई निश्चय किया जाये और उसमें उसी क्षेत्र के किसी महत्वपूर्ण भाग के विचारों पर ध्यान न दिया जाये तो वह प्रक्रिया कुछ गलत होगी। यह मैंने इस दक्षिण पूर्वी एशिया संगठन के बारे में कहा है क्योंकि इस के बारे में हम लोगों को बहुत बुरा लगा है। हमें इसलिय बुरा नहीं लगा कि इस संधि का घटना चक्र पर बहुत प्रभाव पड़ा है, बल्कि उसकी दिशा खतरनाक है; यह एक ऐसी दिशा है जो हो सकता है इस समय सबके सामने स्पष्ट न हो, पर मुझे कोई सन्देह नहीं है कि यदि इस सम्बन्ध में कुछ किया न गया तो यह दक्षिण पूर्वी एशिया की ही नहीं, बल्कि विश्व की शान्ति के हित में हानिकारक सिद्ध होगा।

मैं, बता चुका हूं कि हमारे सामने खतरे हैं। लोग कहते हैं: महान कूटनीतिज्ञों ने इस संधि के पक्ष में कहा है: हम साम्यवादी देशों पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? हम चीन या रूस पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? दूसरे लोग कहते हैं हम अन्य देशों पर कैसे विश्वास कर सकते हैं? मैं इस अन्तिम विश्लेषण पर पहुंचता हूं कि एक देश दूसरे देश पर विश्वास नहीं कर सकता; अथवा, मैं उसे दूसरी प्रकार से कहूं किसी देश को शत प्रतिशत विश्वास पर ही नहीं निर्भर रहना चाहिए। उसे भावी घटनाचक्र, विचारों और नीति आदि के परिवर्तन के बारे में भी विचार करना चाहिए। प्रजातन्त्रात्मक देशों में सरकारें बदलती हैं; दूसरे देशों में भी दूसरी शक्तियां प्रबल हो सकती हैं। अतः यह इस बात का सवाल नहीं है कि हम किस छोटे या बड़े देश पर विश्वास करते हैं; बल्कि यह इस बात का प्रश्न है कि हम किस नीति का अनुसरण करते हैं जो न केवल स्वयं ही ठीक है अपितु अन्य देशों के लिए विश्वासघात करना अधिक कठिन बना देती है। हमें कल्पणा लोक में नहीं रहना चाहिए, जहां कुछ भी गलत काम होता ही नहीं। गलती होती है पर हम एक ऐसा वातावरण उत्पन्न कर सकते हैं जिसमें दूसरे पक्ष के लिये अपने दिये हुए वचनों से हटना अधिक खतरनाक हो जाये। निश्चय ही, यह केवल अच्छी नैतिकता ही नहीं है, बल्कि समझदारी है।

मैं कहना चाहता हूं कि दक्षिण पूर्वी एशिया संधि संगठन आदि सन्धियों से ये सब कूटनीतिज्ञ एक प्रतिकूल वातावरण उत्पन्न कर रहे हैं। यह विश्वास करने का प्रश्न नहीं है, बल्कि ऐसे वातावरण के उत्पन्न करने का प्रश्न है जिस से कि सम्बन्धित देश तथा पक्ष संभल कर चलें और यदि वे सीमा से बाहर जायें तो उनको उसका परिणाम भोगना पड़े। दक्षिण पूर्वी एशिया संधि संगठन के अनुसार आप उन्हें धमकी देते हैं कि यदि वे अमुक काम करेंगे तो आप उनके विरुद्ध कड़ी कार्यवाही करेंगे। धमकी की कूटनीति का व्यापार भूत में भी बहुत सफल नहीं

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

रहा है और भविष्य में भी शायद बहुत सफल न हो, क्योंकि शीघ्र ही आप को इसका सामना करना पड़ता है। यदि कुछ हो जाये तो या तो आप धमकी को पूरा कीजिए चाहे परिणाम में युद्ध हो या कुछ और यदि आप चुप-चाप बैठे रहें और कुछ भी न करें तो लम्बी चौड़ी बातें करने के बाद ऐसा करना बुरा है। अत: धमकी का उपाय व्यर्थ है ; उससे बाधा उत्पन्न होती है ; इससे बुरा वातावरण पैदा होता है। इससे वास्तव में एक ऐसा वातावरण पैदा होता है कि दूसरा पक्ष अपने दिये हुए वचनों का पालन नहीं करता क्योंकि आप स्वयं उसे तोड़ चुके होते हैं। इन सब बातों से चाहे ये चीन या उत्तरी कोरिया या उत्तरी वियतनाम या किसी अन्य के द्वारा की गई हों दूसरे पक्ष के हृदय में एक प्रकार का भय उत्पन्न हो जाता है और इसकी उस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है और इस ओर भी उसी प्रकार के गठबन्धन होते हैं।

सभा देखेगी कि संसार के अनेक देश इन संधियों में किस प्रकार फंसते जा रहे हैं। सोवियत संघ, चीन की जन-सरकार, उत्तरी कोरिया और कुछ अन्य देशों की बहुत सी संधियां हैं। दूसरी ओर उत्तर अतलान्तिक संधि, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलेंड और संयुक्त राज्य ; और दक्षिण कोरिया और फारमोसा के साथ गुप्त सन्धियां हैं : इधर दक्षिण-पूर्वी एशियन संधि है। संधियों के इस विचित्र गठजोड़ में कुछ बातें एकसी होती हैं। पाकिस्तान और संयुक्त राज्य के बीच संधि तो नहीं पर सैनिक मित्रता है। इनमें से कुछ के संयुक्त दोष भी हैं। ऐसा समझा जाता है कि इन संधियों से सम्बन्धित बड़े-बड़े देश सावधान, चतुर और संयमी हैं और वे जल्दी में कोई काम न करेंगे। पर उनसे सम्बन्धित सुदूर पूर्व के कुछ देश न तो सावधान हैं न चतुर हैं और वे सदैव युद्ध या अन्य बातों की धमकी दिया करते हैं। अब, कल्पणा कीजिए इन संधिवर्गों के किसी असावधान तथा अचतुर देश द्वारा कोई जल्दबाजी का काम हो जाता है—संसार में यह संभव भी है--और मान लीजिए बात बढ़ती जाती है और एक बड़ा देश जो इस मामले में फंस जाता है, यद्यपि वह इसे नहीं चाहता, पर फिर भी इसमें घसीट लिया जाता है और परिणाम यह होता है कि कुछ घटनायें घटती हैं। इसी प्रकार संधियों के ये सब चक्कर किसी न किसी प्रकार बनते हैं और चूंकि एक बड़ा देश उसमें फंस जाता है तो दूसरा देश भी उसमें घसीट लिया जाता है। पिछले कई वर्षों से जो साधन प्रयोग में लाये जा रहे हैं, वह मूल रूप से ऐसे ढंग के नहीं हैं जो शान्ति और सुरक्षा उत्पन्न करें। मैं यह सुझाव नहीं देना चाहता कि देश स्वयं अपने तक ही सीमित रहें और यह आशा करें कि कुछ भी नहीं होगा। मेरा अभिप्राय यह नहीं है। सभी देश, यदि वे चाहें, तो इच्छानुसार शक्तिशाली बनें ; वे कुछ संधियां भी करें। पर यह वर्तमान प्रणाली संसार के सभी भागों को घेरने की कोशिश कर रही है।

स्मरण रहे कि अभी एम० ई० डी० ओ० शेष है। कभी भी सुदूर पूर्वीय राज्य संस्था बन सकती है :-निश्चय ही इस सब का उद्देश्य विरोधी पक्ष को डराना है और यही उद्देश्य विरोधी पक्ष का भी होता है। संधियां विरोधी पक्षों को डराने के लिए ही की जाती हैं। पर, परिणाम यह है, कि इससे इतनी बड़ी उलझनें पैदा

हो गयी हैं कि सही-सही विचार करने और काम करने का काम बड़ा कठिन हो गया है। जैसा कि मैंने कहा एक देश के बुरे कार्य से दूसरे देश भी फंस सकते हैं। अत: धीरे-धीरे हम एक अनोखे संसार में जा रहे हैं जो मेरे बचपन की एलिस आश्चर्यजनक देश में पुस्तक की याद दिलाता है या स्वयं एलिस की याद दिलाता है जिसको शीशे से सभी चीजें उल्टी दिखाई पड़ती थीं। हम शान्ति की बात करते हैं पर हमेशा युद्ध की तैयारी करते हैं। हम सुरक्षा की बात करते हैं पर काम ऐसे करते हैं जिनसे असुरक्षा पैदा होती है। हम स्वतन्त्रता और आजादी की बातें करते हैं और हम उपनिवेशों की स्वतन्त्रता और आजादी में बाधक बनते हैं। अत: यह प्रवृत्ति हमें दु:खकर प्रतीत होती है। मैं पुन: दोहराऊंगा, कि हमें कुछ करने की आवश्यकता का ज्ञान होना चाहिए, केवल इस लिये नहीं कि कुछ बुरी शक्तियां या बुरी बातें जिन्हें हम नहीं चाहते हमारा नाश न कर दें। हम उसके बारे में क्या कर सकते हैं। मैं बताता हूं कि हम इस सम्बन्ध में कुछ कर सकते हैं और उपाय यह है कि हम स्वयं अपने आप तक ही सीमित न रहें, बल्कि विरोधी पक्ष वालों से भी सम्पर्क स्थापित करें। दो पक्ष हैं और अगर आज दोनों पक्ष एक दूसरे की ओर घूरें और एक दूसरें को धमकी दें तो वास्तव में यह कोई ठीक तरीका नहीं है। यह तभी सम्भव है जब आप एक समस्या को तय करने के लिए आपस में बातचीत करें जैसा कि जेनेवा में किया गया। मेरा मतलब यह नहीं है कि इससे समस्या पूर्ण रूप से सुलझ जायेगी, पर दूसरा कोई उपाय भी तो नहीं है, क्योंकि ध्यान रहे कि संसार के सभी भागों के विद्वान् व्यक्तियों का यही मत है कि किसी उद्देश्य की पूर्ति का साधन अब युद्ध नहीं रहा। आज युद्ध का कोई महत्व नहीं है। युद्ध बहुत भयानक चीज है, क्योंकि सर्वप्रथम यह आपके उद्देश्य को समाप्त कर देता है और फिर आप को। यदि आप युद्ध को किसी समस्या के हल करने का साधन नहीं स्वीकार करेंगे, तो किसी अन्य साधन को ढूंढ निकालेंगे। ऐसे कामों के करने का कोई लाभ नहीं, जिससे युद्ध हो। अत: यद्यपि मैं नहीं जानता कि इससे समस्या सुलझ जायेगी या नहीं, पर दूसरा उपाय है शान्तिपूर्ण बातचीत; इसमें समय लग सकता है परन्तु युद्ध अथवा तनाव के स्थान पर यह उत्तम है। जेनेवा में इसकी परीक्षा की गयी और कुछ संतोषजनक परिणाम निकले हैं। अधिक सफल परिणाम तो नहीं निकले, पर फिर भी कुछ फल अवश्य निकले हैं। यदि यह उपाय उन समस्याओं के निराकरण के लिये अपनायें जायें जो इस संसार में हमारे सामने आती हैं, तो हम एक अच्छा वातावरण पैदा कर सकेंगे और गड़बड़ी पैदा करने की इच्छा करने वाले देशों को दबा सकेंगे। वे फिर भी हानि पहुंचा सकते हैं। यदि आपके विचार से साम्यवादी देश हानि पहुंचाने पर तुले हुए हैं, तो उन से निबटने का सब से अच्छा ढंग क्या है? उनको इस प्रकार भय दिखाने से काम नहीं चलेगा कि "यदि ऐसा नहीं करोगे तो..." सब से अच्छा तरीका तो यह होगा कि विरोधियों से वार्ता की जाए तथा ऐसे समझोते पर पहुंचा जाए जो दोनों को मान्य हो। सभा को वे पांच सिद्धांत ज्ञात हैं जोकि प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई तथा मैंने संयुक्त वक्तव्य में घोषित किए थे। मेरे विचार से उपस्थित व्यक्तियों में से कोई भी ऐसा न होगा जो उन

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

पांच सिद्धांतों में से एक के भी विरुद्ध हो। ये प्रादेशिक अखण्डता, सम्पूर्ण-प्रभुत्व सम्पन्नता तथा स्वतन्त्रता, अनाक्रमण, हस्तक्षेप न करना और आपसी आदर आदि हैं। क्या कोई इनके विरुद्ध हो सकता है परन्तु फिर भी बहुत से व्यक्तियों ने इनका विरोध किया है। उनका कहना है कि "आप यह कैसे समझते हैं कि इन पर चला जायेगा?" यह ठीक है कि यदि आप किसी पर विश्वास नहीं कर सकते, तो वार्ता करना, पत्र-व्यवहार करना सब बेकार है। तब तो केवल एक मार्ग ही रह जाता है कि या तो आप एकान्तवासी बनिए अथवा लड़िए तथा विपक्षी को हराने का प्रयत्न कीजिए। इस में विपक्षी के शब्दों पर विश्वास करने का कोई प्रश्न नहीं है बल्कि आप को चाहिये कि आप ऐसा वातावरण बनायें जिससे वह अपने वचनों को तोड़ न सके। दूसरे शब्दों में विपक्षी को अपना वचन तोड़ने में कठिनाई हो। यह संभव है कि विपक्षी वचन भंग करके बहुत ही बुरी परिस्थिति में फंस जाये। संयुक्त वक्तव्य के द्वारा, जो कि भारत तथा रंगून में दिया गया था, ऐसा वातावरण बनाया गया है। यदि ये पांच सिद्धांत, आपसी सम्बन्धों को अच्छा बनाने के लिए अन्य देशों द्वारा दोहराये जायें तो यह निश्चित है कि ऐसा वातावरण बन जायेगा। इसका अर्थ यह नहीं कि आक्रमण तथा हस्तक्षेप तथा हानि पहुंचाने वाले विभिन्न देशों की शक्ति समाप्त हो जायेगी। परन्तु इसके कारण आप ऐसी शक्तियों के कार्यों में कठिनाई उत्पन्न कर सकते है। और मानव सम्बन्धों को बढाने का चाहे वह वैयक्तिक हों, चाहे बड़े-बड़े गुटों में, यही मार्ग है।

यह दक्षिण पूर्वी एशिया का प्रश्न है। स्पष्ट है कि इसके चारों ओर के देश, विशेषतया चीन इससे सम्बन्धित हैं। स्पष्ट है कि सुरक्षा को स्थापित करने के लिए चीन तथा विभिन्न अन्य देशों से सम्पर्क पैदा किया जाये और केवल बैठ कर, भविष्य में होने वाली वार्ता किसी बात पर क्रोधित होने से तथा बाद में उस पर कार्यवाही करने से काम नहीं चलेगा।

जेनेवा समझौते में से एक बात और निकली है कि लाओस तथा कम्बोडिया भी दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों के समान 'तटस्थ' देश होंगे। यह जेनेवा समझौते का आधार था, क्योंकि एक ओर तो फ़्रांस आदि की सरकारें यह चाहती थीं कि लाओस तथा कम्बोडिया पर चीन का कोई प्रभाव न पड़े दूसरी ओर चीन लाओस तथा कम्बोडिया को अपने विरुद्ध लड़ाई का या अणु बम या अन्य बम फेंकने का अड्डा नहीं बनने देना चाहता था। क्या उपाय था? इसका एकमात्र हल यही था कि लाओस तथा कम्बोडिया, दोनों में से किसी भी पक्ष को अपने आप को एक दूसरे के विरुद्ध प्रयोग न करने दें अर्थात् वे तटस्थ रहें और जेनेवा करार का यही आधार है। इसमें कुछ और भी जोड़ा गया था, जिस पर आपत्ति की गई थी, किन्तु इस करार का आधार लाओस तथा कम्बोडिया को तटस्थ राज्य बनाना था जिससे कि कोई भी पक्ष एक दूसरे के विरुद्ध उनका प्रयोग न कर सके। मुझे पक्का पता नहीं है कि यह सीटो (एस० ई० ए० टी० ओ०) करार जेनेवा सम्मेलन के मूल सिद्धांत के विरुद्ध है या नहीं क्योंकि उन्होंने लाओस तथा कम्बोडिया को उस क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया है जिसका मैंने उल्लेख किया है। मैं यही कठि-

नाइयां सभा के समक्ष रखना चाहता था, क्योंकि म अनुभव करता हूं कि हिन्दचीन में शांति स्थापित करके यद्यपि हमने कुछ प्रगति कि है किन्तु फिर भी अभी हम बड़े खतरनाक समय में से गुजर रहे हैं। चीन के पूर्वी तट पर क्यूमौप द्वीप में, काफी बड़े पैमाने पर युद्ध हुआ तथा चीन की भूमि पर भी गोले बरसाये गये हैं। परन्तु यह कोई नहीं कह सकता कि कहीं ये छोटी छोटी घटनायें, बड़ी दुघटना का रूप न धारण कर लें। क्यूमौप द्वीप, चीन की भूमि से कुछ ही दूरी पर है। क्यूमौप, फारमोसा तथा अन्य देशों की रक्षा के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण समझा जाता है। चीन की सुरक्षा में भी इसका बड़ा हाथ है। इस प्रकार की घटनायें हो रही हैं। इसलिए मैं कहता हूं कि फारमोसा सरकार का कोई कार्य या दक्षिणी कोरिया सरकार का कोई कार्य इन बड़ी शक्तियों को कभी भी युद्ध में घसीट सकता है।

अभी हम सम्भवतः युद्ध में सम्मिलित न हों। हमारा विचार किसी युद्ध में शामिल होने का नहीं है परन्तु यदि कोई भारत पर आक्रमण करेगा तो हम उससे लड़ेंगे। परन्तु हमें सदा यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि युद्ध प्रारम्भ हो गया तो वह सारे संसार के लिए जिसमें हम भी सम्मिलित हैं, बहुत ही विनाशकारी होगा क्योंकि अब युद्ध का ढंग बदल गया है।

संयुक्त राष्ट्र संघ की बैठक न्यू-यार्क में हो रही है तथा उसकी कार्यसूची सामान्यतया बड़ी लम्बी होती है, क्योंकि उसमें से कभी कुछ निकाला तो जाता नहीं इसलिए वह बढ़ता रहता है। परन्तु इस कार्यसूची में संसार की महत्वपूर्ण समस्याओं का कोई ख्याल नहीं होता। चाहे वे सुदूर पूर्व एशिया की हों अथवा जर्मनी की हों। स्वाभाविकतया इन व्यक्तियों के मन पर यही छायी रहती हैं और इन का उन के निर्णयों पर प्रभाव पड़ता है।

सभा को ज्ञात है कि हमने संयुक्त राष्ट्र-संघ में चीन के प्रतिनिधित्व का समर्थन किया था। कुछ दिन पूर्व संयुक्त राष्ट्र संघ ने इस विषय पर एक संकल्प पारित किया है कि इस विषय पर एक वर्ष या इससे अधिक समय के पश्चात् विचार किया जायेगा। मुझे इस तथ्य का विश्वास हो चुका है कि हमारी सुदूर पूर्व की; नहीं सारे संसार की बहुत सी कठिनाइयां, चीन की ओर से आंखें बन्द कर लेने के कारण हैं। चीन एक बड़ा देश है तथा यह एक बेकार सा प्रश्न है कि आप उसे चाहते हैं या नहीं चाहते हैं। बड़ा देश होने के बावजूद संयुक्त राष्ट्र संघ के कुछ देश इस के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करते इस के परिणाम-स्वरूप अनेक प्रकार के झगड़ों का सृजन होता है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि यदि चीन का प्रतिनिधित्व संयुक्त राष्ट्र संघ में होता, तो कोरिया युद्ध नहीं होता। इसी के कारण संसार की समस्याओं में अधिक कठिनाइयां हो रही हैं।

स्मरण रहे कि यह संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन के प्रवेश का ही प्रश्न नहीं है। चीन संयुक्त राष्ट्र संघ के संस्थापकों में से एक है। केवल प्रश्न यह है कि चीन का प्रतिनिधित्व कौन करता है। इस बात की ओर अच्छी प्रकार ध्यान नहीं दिया गया है। यह प्रश्न सुरक्षा परिषद् के तय करने का नहीं है, क्योंकि वे तो केवल नवीन देशों के प्रवेश के संबंध में निश्चय करते हैं। चीन कोई नवीन देश नहीं है। वह इसके संस्थापक सदस्यों में

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

से है। प्रश्न केवल यही है कि उसका प्रतिनिधित्व कौन करता है। और इसीलिए मुझे इसका आश्चर्य है कि यह सीधा सा प्रश्न, इतना उलझाया गया है जिसके कारण असीमित कठिनाइयां उठ खड़ी हुई हैं। जब तक चीन की जनवादी सरकार को मान्यता नहीं प्रदान की जायेगी तब तक सुदूर पूर्व में अथवा दक्षिणपूर्वी एशिया में किसी भी प्रकार से शान्ति नहीं स्थापित हो सकती। मैं कहता हूं कि दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा सुदूर पूर्व की सुरक्षा का सबसे बड़ा उपाय, उन देशों द्वारा चीन को मान्यता देना है तथा चीन का संयुक्त राष्ट्र संघ में प्रवेश है। इस तरह से सुरक्षा की अधिक संभावना है, बजाय दक्षिणपूर्वी एशिया संधि-संगठन अथ उपायों के।

यदि चीन सदस्य बन जाय तो संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन से आमने-सामने चर्चा होने के साथ-साथ चीन का भी संयुक्त राष्ट्र संघ के प्रति कुछ उत्तरदायित्व हो जायगा। आजकल बड़ी विचित्र स्थिति है। कभी-कभी संयुक्त राष्ट्र-संघ, चीन की जनवादी-सरकार को कुछ करने के आवेश के संकल्प को पारित करता है। उत्तर में चीन कहता है कि आप हमें मान्यता नहीं देते हैं; हमारे प्रतिनिधि वहां नहीं हैं तब हम आपके आदेशों को क्यों मानें। अतः उत्तरदायित्व तथा सहयोग के उपायों के बजाय आप सहयोग के दरवाजे बन्द कर राष्ट्रों को अनुत्तरदायी बनाते हैं तथा उस को सुरक्षा कहते हैं। इसका परिणाम यह है कि संयुक्त राष्ट्र संघ का प्रभाव कम होता जाता है। मैं यह नहीं चाहता हूं कि यह प्रभाव कम हो क्योंकि शान्ति स्थापना के लिए यह संसार की सब से बड़ी आशा का केन्द्र है।

मैं एक और विषय पर कुछ कहना चाहता हूं। एशिया अथवा दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों में इस महान् देश चीन के प्रति भय का कारण यह है कि इन में बहुत से चीनी बसे हुए हैं। कुछ देशों में जैसे मलाया में बड़ी कठिन समस्या है। यहां हम सब मलाया की स्वतंत्रता के पक्ष में हैं। परन्तु यह स्मरण रखना चाहिए कि मलाया की समस्या आसान नहीं है, बड़ी कठिन है; क्योंकि मलाया के मूल निवासी मलाया में कम संख्या में हैं। इसी कारण कठिनाइयां तथा गड़बड़ी होती हैं। किसी एक का बहुमत नहीं है चीन निवासी अधिक संख्या में हैं, भारतीय १० प्रतिशत, या १५ प्रतिशत होंगे। मलाया के मूल निवासी यह नहीं चाहते कि मलाया के जो निवासी नहीं हैं उन को शक्ति मिल जाये। मैं केवल उन कठिनाइयों की ओर संकेत कर रहा हूं जिनको हमें समझना है केवल तर्क के आधार पर विचार नहीं किया जा सकता। मैं यह कहना चाहता हूं कि, मलाया, बर्मा, इंडोनेशिया, हिन्दचीन, थाईलैंड आदि में बड़ी संख्या में चीनी रहते हैं जिसके कारण वहां के लोग चीन से आते हैं। प्राचीन काल में तथा अभी भी चीन सरकार किसी चीनी को चीनी राष्ट्रीयता बदलने का अधिकार नहीं देती और इसलिए बड़ी अजीब सी स्थिति उत्पन्न हो गई है। कभी-कभी उन्हें दोहरी राष्ट्रीयता रखनी पड़ती है।

यह भी कारण था जिससे दक्षिण शिया के इन सब देशों में रहने वाली चीनी जातियों की स्थिति इस देश के लिये बड़ी घबड़ाहट का कारण बन गई। जब एक देश में ५० प्रतिशत विदेशी हों तो कठिनाइयां पैदा हो जाती हैं।

एक मनोरंजक स्थिति पैदा हो रही है और अभी हाल ही में चीन के प्रधान मंत्री चाऊ-एन-लाई तथा गणतन्त्र के अध्यक्ष माओत्सेतुंग दोनों ने उसके प्रति निर्देश किया है। उन्होंने कहा है कि दूसरे देशों में निवास करने वाली चीनी जातियों के बारे में हम विचार करने जा रहे हैं परन्तु पुराने ढंग से नहीं अपितु इस ढंग से कि इन जातियों को या तो चीन की राष्ट्रीयता स्वीकार करनी है और अन्य देशों के आन्तरिक मामलों में कतई हस्तक्षेप नहीं करना है अथवा उनको उसी देश की राष्ट्रीयता स्वीकार करनी है और चीन से कोई संबंध नहीं रखना है। यह एक अच्छी बात है जिससे दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की बहुत सी कठिनाइयां तथा भ्रम स्वतः ही दूर हो जायेंगे।

अब दूसरी बात लीजिए। बहुत से यह देश भयभीत हैं, इस कारण नहीं कि सरकारें सरकारी आधार पर क्या करती हैं परन्तु इस बात से कि गुप्त रूप से साम्यवादी दल की कार्यवाहियों की सहायता से वे क्या कर सकती हैं। इस चीज ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में एक कठिनाई उत्पन्न कर दी है। पहले एक देश दूसरे से विरुद्ध रहता था और दो ही राष्ट्रों में केवल विरोध रहता था परन्तु अब एक नवीन स्थिति पैदा हो गई है। राष्ट्रीय समूहों में अन्तर्राष्ट्रीय समूह पैदा हो गये हैं जो कि राष्ट्रीय समूह का विरोध करते हैं परन्तु मनोवैज्ञानिक, भावनात्मक, तथा बौद्धिक दृष्टि से वे किसी राष्ट्र के राष्ट्रीय समूह से संलग्न हैं। वास्तविक कठिनाई का यही कारण है। मैं साम्यवाद के सिद्धान्त अथवा व्यवहार की चर्चा नहीं कर रहा अपितु केवल इन सब देशों की वास्तविक कठिनाई की ओर संकेत कर रहा हूं। यदि किसी देश में कोई ऐसा साम्यवादी दल हो जिसका किसी अन्य देश से कोई संबंध न हो तो बात दूसरी है। ऐसे दल की एक विशेष राजनीतिक अथवा आर्थिक नीति है। कठिनाई तो तब पैदा होती है जबकि देश का वह दल बौद्धिक तथा अन्य दृष्टियों से दूसरे देशों के अन्य दलों से संबंधित हों। अन्य देश अपने लाभ के लिये उस का उपयोग कर सकता है। बर्मा, थाईलैंड इत्यादि दक्षिण पूर्वी एशिया के देशों की विशेषतः यही डर है जिसका परिणाम दुर्भाग्य से यह होता है कि आर्थिक तथा अन्य प्रकार की समस्याओं के साथ-साथ इस प्रकार की उलझनें भी आ जाती हैं और विभिन्न प्रकार की प्रतिक्रियायें होती हैं। जिस प्रकार कॉमिनटर्न नाम का अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवादी संगठन जो कि पिछले महायुद्ध में समाप्त कर दिया गया था बाद को कॉमिनफार्म के रूप में प्रकट हुआ। उसी प्रकार उस भाव को ले कर चलने वाली इन संस्थाओं अथवा कार्यवाहियों ने विभिन्न राष्ट्रों में काफी भ्रम तथा गड़बड़ी पैदा कर दी है। अब प्रतिक्रियास्वरूप विभिन्न देशों के राष्ट्रीय मामलों में दूसरे ढंग के अन्तर्राष्ट्रीय हस्तक्षेप पैदा हो रहे हैं; सैद्धान्तिक रूप में नहीं अपितु व्यवहारिक सरकारी तथा निजी आधार पर। यह बड़ी असाधारण सी बात है कि अनेक देशों में केवल एक ओर से नहीं अपितु सब ओर इस प्रकार की चीज पैदा हो रही है।

अतः यदि हम शान्ति की आकांक्षा करते हैं तो हमें इस समस्या का मुकाबला करना है, सैनिक सहायता संबंधी संधियां करके नहीं, धमकियों से नहीं अपितु आमने सामने आ कर। क्योंकि यदि एक बार हम यह जान लें, जैसा कि मेरा विश्वास है कि सारी दुनियां इस से अवगत है कि युद्ध के द्वारा शान्ति स्थापित नहीं हो

[श्री जवाहर लाल नेहरू]

सकती—दोनों बड़े प्रतिद्वंद्वी कभी एक दूसरे से परास्त नहीं हो सकते कि यदि युद्ध नहीं होगा तो हमको सहअस्तित्व की भावना अपने में जाग्रत करनी होगी और परस्पर समझौता करना होगा । यदि सह-अस्तित्व की भावना का अन्त कर दिया जाये तो उसका विकल्प केवल युद्ध तथा परस्पर विनाश के अतिरिक्त कुछ नहीं है ।

अब मैं लंका, पांडीचेरी तथा गोआ की समस्याओं के प्रति संक्षेप में निर्देश करूंगा ।

लंका के बारे में माननीय सदस्यों को ज्ञात होगा कि अगले दस या उससे कुछ अधिक दिनों के भीतर ही लंका के प्रधान मंत्री कुछ अन्य मंत्रियों के साथ दिल्ली आ रहे हैं । लंका के प्रधान मंत्री की ओर से यह सुझाव आया है कि वे हमारे साथ बातचीत करना चाहते हैं और स्वभावतः हम ने कहा कि बातचीत करने के लिए हम उनका स्वागत करने को तैयार हैं । मैं इस विषय पर अधिक तो नहीं कहना चाहता, केवल इतना कहता हूं कि लंका में जो स्थिति उत्पन्न हो गई है उससे मुझे बड़ा दुःख पहुंचा है और समस्या के संतोषजनक हल के बारे में जो आशायें थीं वे पूरी नहीं हुई हैं । और व्यक्तियों की एक बहुत बड़ी संख्या जो सब प्रकार से राज्यहीन की जा रही है उनसे सम्बन्धित समस्या का अभी कोई समाधान नहीं हुआ है ।

फ्रांसीसी बस्तियों के बारे में लगभग गत दो सप्ताहों से फ्रांसीसी सरकार और भारत सरकार के प्रतिनिधियों के बीच चर्चा चल रही है और उस में काफी प्रगति हो गई है । मुख्य प्रश्नों के अतिरिक्त वे सभी प्रकार के विषयों पर विचार कर रहे हैं । मुझे आशा है कि एक या दो सप्ताहों में ही यह चर्चा समाप्त हो जायेगी और दूसरे मास के अन्त के पूर्व ही हम कुछ औपचारिक कार्यवाही कर सकेंगे । मैं सभा को और अधिक विश्वास दिलाना चाहता था परन्तु यह जरा कठिन है कि चर्चा के बीच में इन सब बातों का विस्तृत वर्णन किया जाये । किन्तु मुझे प्रसन्नता है कि यह कठिन तथा जटिल विषय अब सुलझ रहा है, क्योंकि पांडीचेरी तथा अन्य स्थान कितने ही छोटे क्यों न हों परन्तु उन से सम्बन्धित मामलों में बड़े-बड़े राष्ट्रों का हाथ है । भारत का उसमें यह हित तथा प्रतिष्ठा निहित है कि भारत में कोई विदेशी बस्ती न रहे । फ्रांस की यह प्रतिष्ठा निहित है कि वह ऐसा कोई काम न करे जिससे उस प्रतिष्ठा पर कोई आघात पहुंचे । हम भी ऐसा करना नहीं चाहते हैं । फ्रांस एक बड़ा राष्ट्र है । जो कुछ हम करना चाहते हैं वह फ्रांस के सहयोग तथा मित्रता से ही, अतः जो कुछ कार्यवाही करने का हम निश्चय करेंगे उससे हमारे सम्बन्ध बजाये बिगड़ने के अच्छे ही होंगे । हम ने यह मार्ग ग्रहण किया है और मुझे बड़ी प्रसन्नता है कि इससे सारवान फलप्राप्ति की संभावना है ।

हमने यह रास्ता पुर्तगाली बस्तियों के बारे में भी ग्रहण करने का प्रयत्न किया । परन्तु यह अभाग्य से उसका कोई परिणाम नहीं निकला और इन महीनों में पुर्तगाली सरकार ने जो कुछ किया है उस से कुछ आशाजनक फल प्राप्ति की आशा भी नहीं है । हमने इस समस्या को शान्तिपूर्ण उपायों से सुलझाने का निश्चय

किया है और हमें विश्वास है कि हम उसको सुलझा सकेंगे ।

माननीय सदस्यों ने इस पर कुछ असंतोष प्रकट किया है कि हम गैर गोआ निवासियों को अर्थात् भारत के राष्ट्रों की बहुत संख्या में इन बस्तियों में घुसने का प्रोत्साहन नहीं देते । इसमें कोई बहुत बड़ा सिद्धान्त निहित नहीं है कि भारतीय राष्ट्रीय वहां नहीं जायेंगे । भारत के राष्ट्रीयों को वहां जाने का प्रत्येक अधिकार है। यह हमने किसी ऊंचे सिद्धान्त के कारण नहीं किया है अपितु इसके बहुत से कारण हैं। हमने उनको प्रोत्साहित करना इसलिए ठीक नहीं समझा क्योंकि उस अवस्था में गोआ वालों के युद्ध का रूप परोक्ष में आ जाता जो कि यह दिखाने के लिए परमावश्यक है कि यह गोआ वालों का ही युद्ध है । फिर यही कहा जाता है कि गोआ निवासियों की इच्छाओं के विरुद्ध यह काम भारत के राष्ट्रीय कर रहे हैं। हम संसार को यह दिखाना चाहते हैं कि गोआ निवासी ही स्वयं पुर्तगाली शासन से निकल कर भारत में मिलना चाहते हैं। मेरा विचार है कि शनैः शनैः संसार ऐसा अनुभव करने लगा है ।

गोआ में शत प्रतिशत पुलिस राज्य है। किसी के कोई मत प्रकट करने का प्रश्न हो पदा नहीं होता । समाचारपत्र बाहर से वहां नहीं भेजे जा सकते और पुर्तगाली सरकार के विरुद्ध नम्रतापूर्वक थोड़ी सी बात कहने का अर्थ लम्बी जेल यात्रा, देश निर्वासन इत्यादि है। गोआ के अन्दर, जहां तक हमको ज्ञात है, सत्याग्रह इत्यादि करने के फलस्वरूप काफी संख्या में व्यक्तियों को बन्दी बना लिया गया है । गोआ के बाहर और विशेषतः बम्बई शहर में बहुत से गोआ वाले अनेक बड़े-बड़े पदों पर नियुक्त हैं और अनेक धंधों में लगे हुए हैं । यह बात प्रेरणा देने वाली है कि किस प्रकार ये गोआ निवासी जो साधारण रूप से राजनैतिक विचार के नहीं हैं, राजनीतिज्ञ नहीं हैं, जिन्होंने किसी आन्दोलन में भाग नहीं लिया है और जो प्रोफेसर हैं, डाक्टर हैं तथा ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने पिछले दिनों में पुर्तगाली सरकार से सम्मान प्राप्त किये हैं सब पिछले एक या दो महीने से गोआ की स्वतन्त्रता के लिये कटिबद्ध हो गए हैं और गोआ को भारत में मिलाना चाहते हैं। इस प्रकार हम आगे बढ़ रहे हैं सम्भवतः उतनी तेजी से नहीं जैसा कि माननीय सदस्य चाहते हैं परन्तु निस्संदेह एक विशिष्ट दिशा की ओर हम जा रहे हैं। कुछ आर्थिक उपाय भी हमने किये हैं।

एक बात मैं और कहना चाहूंगा । एक बार मैं ने हैदराबाद के प्राचीन अधिकारियों तथा पुर्तगाल के बीच हुई वार्ता का निर्देश किया था। (**एक माननीय सदस्य**—राज्य सभा में।) मुझे खेद है कि जो थोड़े से वाक्य मैं ने वहां कहे उनका पत्रों ने अच्छी तरह प्रकाशन नहीं किया और न तथ्यों को पदार्थ रूप में ही रखा गया ।

मैं तथ्यों को ठीक-ठीक रूप में प्रकट करूंगा। मैं ने वहां यह नहीं कहा था कि पुर्तगाल सरकार और पुरानी हैदराबाद सरकार में शासकीय स्तर पर कोई वार्ता हुई थी । यह स्वतन्त्रता के पूर्व, १९४५ या १९४६ की बात है । उस समय गोआ के पत्तन तथा उसकी दूसरी सुविधाओं पर किसी प्रकार के संयुक्त नियंत्रण के सम्बन्ध में बातचीत हुई थी; गोआ के हस्तांतरण करने का कोई प्रश्न

[श्री जवाहरलाल नेहरू]

नहीं था। यह बातचीत किन्हीं मध्यस्थ साधनों द्वारा हुई थी। इस बात के निर्देश में मेरा एक मात्र प्रयोजन यह है कि गोआ वाले उस समय पत्तन के अतिरिक्त प्रशासन और दूसरी बातों के सम्बन्ध में १९४६ में हैदराबाद राज्य से चर्चा करने के लिए तैयार थे। मुझे मालूम है कि हैदराबाद सरकार द्वारा तत्कालीन भारत सरकार को यह जानकारी दी गई थी। इसमें कोई गुप्त बात नहीं है। हमने अपनी पुरानी फाइलें देख रखी हैं। भारत में तथा दूसरे स्थानों पर अनेक घटनाओं के कारण कोई विशेष घटना नहीं हुई। मेरा अभिप्राय यह है कि वे उस समय बातचीत करने के लिए तैयार थे किन्तु आजकल उन्होंने जो दृष्टिकोण अपना रखा है उसका अर्थ है कि गोआ के सम्बन्ध में कोई बातचीत नहीं हुई थी।

सदन को याद होगा कि इस सम्बन्ध में कुछ पत्रव्यवहार हुआ था। पुर्तगाली अधिकारियों ने वहां भेजने के लिए कतिपय अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षकों के बारे में कहा था। हम शीघ्र तैयार हो गए। हमने कहा कि प्रेक्षकों के कार्य तथा उनके चुनाव के सम्बन्ध में हमें बातचीत करनी चाहिये। उन्होंने नकारात्मक उत्तर दिया। वे नियुक्ति के पहले ही निर्धारण करना चाहते थे। इस सम्बन्ध में विस्तृत पत्र-व्यवहार हुआ जो प्रकाशित हो गया है। परिणाम यह निकला कि वह मामला समाप्त हो गया है। हमने कहा कि हम बातचीत के लिए प्रस्तुत हैं। हमने जो कुछ कहा उस पर ध्यान दीजिये। हमने अन्तर्राष्ट्रीय प्रेक्षकों के कार्य और उनके चुनाव के तरीके के सम्बन्ध में कहा था। फिर तो उन्होंने यहां आने तक से इन्कार कर दिया। इसका कारण यह कि वह जो बात करते हैं उसका पूरी तरह पालन नहीं कर सकते हैं क्योंकि उन्होंने जो मार्ग अपनाया है वह सर्वथा युक्तिहीन है। इसलिए उन्होंने इन्कार कर दिया। मेरा विश्वास है कि वहां किसी प्रकार का प्रेक्षण नहीं होगा। गतिरोध जारी है। यह उसी प्रकार ही नहीं बना रहेगा क्योंकि कुछ ऐसी घटनाएं घटित हो रही हैं जो निस्संदेह गोआ में पुर्तगाली प्रशासन का अन्त कर देंगी।

उपाध्यक्ष महोदय : प्रस्ताव प्रस्तुत हुआ :

> "कि वर्तमान अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और उसके संबंध में भारत सरकार की नीति पर विचार किया जाये।"

मुझे अनेक संशोधनों की सुचना मिली है। मैं माननीय सदस्यों से यह जानना चाहता हूं कि वे कौन-कौन से संशोधन प्रस्तुत करना चाहते हैं। इसके पश्चात् **श्री जेठा लाल जोशी** (मध्य सौराष्ट्र) ने संशोधन संख्या १; **श्री रघुनाथ सिंह** (जिला बनारस—मध्य) ने संशोधन संख्या २; **श्री एन० एम० लिंगम** (कोयम्बटूर) ने संशोधन सं० ३; **श्री साधन गुप्त** (कलकत्ता—दक्षिण-पूर्व) ने संशोधन सं० ४; **डा० राम सुभग सिंह** (शाहाबाद—दक्षिण) ने संशोधन सं० ६; **श्री वी० एन० राजभोज** (शोलापुर—रक्षित—अनुसूचित जातियां) ने संशोधन सं० ७ और ८; **श्री एस० वी० रामस्वामी** (सलेम) ने संशोधन सं० ९; **श्री एस० एन० दास** (दरभंगा—मध्य) ने संशोधन सं० १०; **श्री के० आर० शर्मा** (जिला मेरठ—पश्चिम) ने संशोधन सं०